National Journal of Multidisciplinary Research and Development
ISSN: 2455-9040; Impact Factor: RJIF 5.22
www.nationaljournals.com
Volume 2; Issue 1; January 2017; Page No. 46-47

रुद्र का भौतिक आधार : अग्नि

डॉ0 भानु प्रकाश त्रिपाठी

अतिथि प्रवक्ता, संस्कृत विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश, भारत।

प्रस्तावना

रुद्र का भौतिक स्वरुप क्या है? इस सम्बन्ध में अनेक विवरण विभिन्न संहिताओं एवं ब्राह्मणग्रन्थों में प्राप्त होते हैं। तैत्तिरीय संहिता में रुद्र की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में एक आख्यान आया है। जिसके अनुसार एक बार जब देवों का असुरों से युद्ध हुआ तो देवों ने अपना धन अग्नि के पास निक्षिप्त कर दिया। अग्नि की इच्छा उस धन को ले, लेने की हुई। वह धन को लेकर चला गया। संग्राम के पश्चात् देवों ने बलात् अग्नि से अपना धन लेना चाहा जिससे वह रो पड़ा, और क्योंकि अग्नि रो पड़ा इसलिए उसे ही रुद्र कहते हैं।[1] इसी संहिता में एक अन्य स्थान पर पुनः अग्नि को रुद्र कहा गया है।[2] शतपथ ब्राह्मण में भी अनेक स्थानों पर स्पष्ट शब्दों में अग्नि को ही रुद्र कहा गया है–यो वै रुद्रः सो अग्निः[3], अग्निर्वै रुद्रः[4]। शतपथ ब्राह्मण में एक अन्य स्थान पर अग्नि के विषय में जो शब्द कहे गये हैं, उनसे रुद्र का स्वरूप स्पष्ट भासित हो जाता है। इसके अनुसार अग्नि के ही शर्व तथा भव ये दो नामान्तर हैं। अग्नि को शर्व पूरब के लोग कहते हैं और भव पश्चिम के। किन्तु ये अग्नि के भयंकर रूप के द्योतक हैं। उसके सबसे शान्त रूप को अग्नि कहा जाता है जो स्विष्टकृत् अर्थात् अभीष्ट पूर्ण करने वाला अतएव मंगलमय है।[5]

शर्व तथा भव शब्दों को शतपथ ब्राह्मण अग्नि के अशान्त नाम बताता है। श0ब्रा0 में ही एक स्थल पर अग्नि के आठ भिन्न–भिन्न रूपों का प्रतिनिधित्व करने वालों के रूप में रुद्र, शर्व, पशुपति, उग्र, अशनि, भव और महान् देव के नाम दिये गये है और शर्व, भव, पशुपति तथा रूद्र सभी को अग्नि कुमार, का नाम बताया गया है।[6] वाजसनेयी संहिता में भी अग्नि, अशनि, पशुपति, भव, शर्व, ईशान, महादेव, उग्रदेव तथा अन्य की देवों के रूप में अथवा एक ही देव के विविध रूप में गणना की गयी है।[7]

इससे स्पष्टतः प्रतीत होता है कि रुद्र अग्नि के भयंकर, प्रचण्ड तथा विनाशकारी स्वरूप का द्योतक है। एक ओर तो अग्नि यज्ञपुरोहित है, और देवताओं को यज्ञ तक वहन करता है, और यज्ञ की समस्त क्रियाओं का आधार बन कर यजमान को प्रत्येक कामना को प्राप्त कराता है, इसीलिए स्विष्टकृत् कहलाता है। साथ ही वैश्वानर के रूप में प्राणियों के अंदर प्रविष्टि होकर अन्न रसादि के सम्यक् परिपाक द्वारा जीवन को भी धारण करता है। किन्तु दूसरी ओर उसका सर्वभक्षी तथा विनाशक रूप भी है। कुपित होने पर यही अग्नि बड़े–बड़े प्रासादों को भस्मसात् कर देता है, विशाल वन भी देखते ही देखते राख बन जाते हैं और कई बार तो मनुष्य तथा पशु भी इसके उग्र रूप की चपेट में आ जाते हैं। रूद्र की धारणा के पीछे अग्नि का यही जनविनाशक रौद्र रूप ऋग्वैदिक ऋषियों की दृष्टि में था।

शतरूद्रिय मंत्रों की व्याख्या करते हुए शतपथ ब्राह्मण में ऋषि कहता है कि अग्नि का दाहकता शक्ति से पूर्ण अमर रूप ही रूद्र है। अपने इस अविनाशी रूप में अग्नि सर्वभक्षी और सर्वविनाशक है। अतः उसे रूद्र कहते हैं। देवताओं ने उससे डरकर उसे शान्त करने के लिए इन मंत्रों का पाठ किया है।[8]

अग्नि को रूद्र मानने की धारणा के बीज प्राचीनतम् मंत्रसंहिताओं में उपलब्ध होते हैं। ऋग्वेद में ऐसे अनेक मन्त्र हैं, जिनमें अग्नि और रूद्र का तादात्म्य किया गया है अथवा जिनमें रूद्र शब्द अग्नि के विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुआ है। इस संबंध में ऋग्वेद के द्वितीय मण्डल की निम्न ऋचा विशेष उल्लेखनीय है–

त्वमग्ने रूद्रो असुरो महो दिवस्त्वं शर्धो मारूतं पृक्ष ईशिषे।[9]

इस ऋचा में अग्नि को रूद्र के अतिरिक्त असुर, मरूतों का बल तथा पुष्टिकारक कहा गया है, जो क्रमशः रूद्र के ईशान, मरूत्पिता आदि विशेषणों तथा जल एवं ओषधियों से उनके सम्बन्ध का परिचायक है। इस ऋचा की व्याख्या में आचार्य सायण कहते हैं, कि रूद्र (दुःख या पाप) को दूर करने (द्रावण) के कारण ही अग्नि को रूद्र कहते हैं–

रूद् दुःखं दुःखहेतुर्वा पापादिः। तस्य द्रावयिता एतन्नामको देवो असि, रूद्रो वै एष यदग्निः इत्यादिषु (तै0सं0 5/4/3) अग्नेः रूद्रशब्देन व्यवहारात्।[10] आचार्य सायण रूद्र की दूसरी व्युत्पित भी करते हुए कहते हैं–कि रूद्र रौति से बना है। उसका पूजन न करके मनुष्य दुःख में पड़कर रोते हैं–यद्वा त्वं रूद्रः। रौति। माम् अनिष्टात् वा नराः दुःखे पतिष्यन्ति। रूद्रस्तादृशो असि।[11]

ऋक् संहिता के कतिपय अन्य मंत्रों में रूद्र शब्द अग्नि के विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुआ है।

अग्निं सुम्नायं दधिरे पुरोजनाः वाजश्रवसमिह वृक्तबर्हिषः।
यतस्रुचः सुरूचं विश्वदेव्यं रूद्रं यज्ञानां साधदिष्टिमपसाम्।।[12]

अर्थात् आसन को बिछाये हुए और स्रुचाओं को हाथ में लिए हुए याजक अपने सुख के लिए बल और अन्न से सम्पन्न, उत्तम तेजस्वी, सभी का हित करने वाले, रूद्र (शत्रुओं को रुलाने वाले) श्रेष्ठतम् कर्मों एवं यज्ञों को पूर्ण करने वाले अग्नि को यहां इस यज्ञ में स्थापित करते हैं।

आ वो राजानम् अध्वरस्य रूद्रं होतारं सत्ययजं रोदस्योः।
अग्निं पुरा तनयित्नोरचिताद्धिरण्यरुपमवसे कृणुध्वम्।।[13]

अर्थात् हे मनुष्यों! चंचल विद्युत् की उत्पत्ति से पूर्व ही यज्ञ के अधिपति, देवों को बुलाने वाले, रुद्र (शत्रुओं को रूलाने वाले) द्यावापृथिवी के बीच में सत्य यज्ञ करने वाले हिरण्यरूप अग्नि को, रक्षा के लिए उत्पन्न करते हैं।

ऋग्वेद के एक अन्य मंत्र में रूद्र का एक प्रमुख नाम उग्र अग्नि के विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुआ है और अग्नि को दुर्गों का विनाशक कहा गया है। जिससे अग्नि एवं रूद्र की एकात्मकता स्पष्टरूपेण प्रतीत होती है।

य उग्र इव शर्यहा तिग्मशृङ्गो न वंशगः।
अग्नेपुरो रूरोजिथ।।[14]

जो उग्र की तरह बाणों से शत्रुओं का नाश करने वाला, तीक्ष्ण ज्वालाओं के समान हे अग्नि! तू असुरों की तीन पुरियों का नाश करता है।

इस मंत्र की व्याख्या करते हुये सायण ने लिखा है–रूद्रो वै एष यदग्निरिति श्रुतेः रूद्रकृतमपि त्रिपुरदहनम् अग्निकृतमेव इत्यग्निः स्तूयते।

यद्यपि उपर्युक्त उद्धरणों में अग्नि के सामान्य रूप को ही रूद्र कहा गया है किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि रूद्र के स्वरूप के साथ अग्नि का अन्तरिक्षीय रुप विद्युत् ही विशेषतः सम्बद्ध था। पार्थिव एवं आकाशीय अग्नि (सूर्य) तो अपेक्षाकृत कम हानिप्रद हो सकते हैं किन्तु अन्तरिक्ष से गिरने वाली तडित् प्रायः पशुओं और मनुष्यों के जीवन के लिए अधिक हानिकारक होती है अतः रूद्र का विशेष सम्बद्ध उसी से प्रतीत होता है। ऋग्वेद के एक मंत्र में रूद्र से यह प्रार्थना ऋषि करता है कि वह अपनी विद्युत् रूपी हेती या वज्र को अन्यत्र गिरायें–

परि णो हेती रूद्रस्य बृज्याः परि त्वेषस्य दुर्मतिर्मही गात्।[15]

रूद्र के मूलरूप को तडित् से सम्बन्धित मान लेने पर उनके नाम का अर्थ भी ठीक प्रकार से स्पष्ट हो जाता है। गरजती हुई विद्युत् का रूद्र (चिल्लाने या रोने वाला) नाम सर्वथा संगत प्रतीत होता है। किन्तु यह शब्द तीव्रता से जलती हुई पार्थिव अग्नि के चटखने की ध्वनि को भी सूचित करता है। भीषण रूप से दंदह्यमान अग्नि से इस प्रकार की ध्वनि प्रायः सुनी जा सकती है। निरूक्तकार यास्क ने रूद्र शब्द का निर्वचन करते हुए सम्भवतः इधर ही संकेत किया है–

रूद्रो रौतीति सतः रोरूयमाणो द्रवतीति वा रोहयतेर्वा।
अग्निरपि रूद्र उच्यते।[16]

यहां यास्क ने अग्नि को रूद्र बताकर इसके तीन निर्वचन किये हैं। वह चिल्लाता है, अथवा शोर करते हुए इधर–उधर भागता (प्रसरित होता) है अथवा (विद्युत् पात् से) लोगों को रूलाता है। इसलिए उसे रूद्र कहते हैं। स्पष्ट है कि ये तीनों ही निर्वचन पार्थिव अग्नि तथा अन्तरिक्षीय तडित् दोनों पर समानरूप से घट सकते हैं। लेकिन बृहद्देवताकार को रूद्र का अन्तरिक्षीय स्वरूप ही अधिक अभीष्ट है। उनके अनुसार वृष्टि के समय अग्नि का विद्युत् रूप अन्तरिक्ष में रोता या गरजता है अतः अन्तरिक्षस्थानीय अग्नि को ही रूद्र कहते हैं।[17]

ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के एक सौ चौदहवें सूक्त के पहले मंत्र की व्याख्या में सायण ने रूद्र शब्द की एक अन्य प्रकार से व्युत्पत्ति की है, जिससे अग्नि का रूद्र से तादात्म्य स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है–

रुणद्धि आवृणोति इति रुद् (क्विप्) अन्धकारादिः
तद् दृणाति विदारयति इति रुद्रः।

अर्थात् दृष्टि अवरोधक अंधकार का विदारण करने के कारण रुद्र 'रुद्र' है। स्पष्ट है कि अग्नि या प्रकाश ही अंधकार का निवारण करता है।

वेबर[18] का मत है कि प्राचीनतम् काल में यह देव (रुद्र) विशेषतः झंझावात के भीषण रव का ब्यंजक था। क्योंकि अग्नि का रव भी इसी के समान होता है अतः झंझावात एवं अग्नि दोनों के संयोग से क्रोध और विनाश का यह देवता बना।

वस्तुतः अग्नि, विद्युत् एवं झंझावात से रुद्र को सम्बन्धित मान लेने पर ही उनके लिए ऋग्वेद संहिता में प्रयुक्त अधिकांश विशेषणों का सही अर्थ किया जा सकता है। रूद्र को ऋग्वेद में प्रायः अरूष[19] तथा बभ्रु[20] कहा गया है। दोनों का अर्थ भूरा या कुछ–कुछ लाल है। ये विशेषण सम्भवतः पार्थिव अग्नि के पीत–रक्त वर्ण को द्योतित करते हैं और कल्मलीकिन्[21] (तेजस्वी, देदीप्यमान) तथा श्वितीचे[22] (श्वेतद्युति वाले) आदि विशेषणों से सम्भवतः घने मेघों के अंधेरे में तीव्रता से चमक जाने वाली श्वेतवर्ण की विद्युत् की ओर संकेत है। इन सबसे स्पष्ट होता है कि अग्नि को ही रुद्र का भौतिक आधार मानना युक्तियुक्त है।

संदर्भ

1. देवासुराः संयत्ता आसन्। ते देवा.....अग्नौ वायं वसु संन्यदधत.... ...तदग्निर्न्यकामयत तेनापाक्रमत् तद् देवा अवरुरुत्समाना अन्वायन्। तदस्य सहसा आदित्सन्त। सः अरोदीत् यदरोदीत् तद्रुद्रस्य रुद्रत्वम्। तै0सं0 1/5/1
2. रुद्रो वा एष यदग्निः– तै0सं0 5/4/3
3. श0ब्रा0 5/2/4/13
4. श0ब्रा0 5/3/1/10
5. अग्निर्वै स देवः। तस्यैतानि नामानि शर्व इति यथा प्राच्या आचक्षते। भव इति यथा बाहीकाः। पशूनां पती रूद्रः अग्निरिति। तानि अशान्तानि एवं इतराणि नामानि। अग्निरित्येव शान्ततमम्। तस्माद् अग्नय इति क्रियते स्विष्टकृत् इति–श0ब्रा0 1/7/3/8
6. श0ब्रा0 6.1.3
7. वा0सं0 39.8
8. अथातः शतरूद्रियं जुहोति। अत्रैष सर्वोऽग्निः संस्कृतः। स एषो अत्र रूद्रो देवता। तस्मिन् देवा एतद् अमृतं रूपम् उत्तमम् अदधु। स एषो अत्र दीप्यमानो अतिष्ठद् अन्नमिच्छमानः। तस्माद् देवा अबिभ्युः यद्वै नो अयं हिंस्याद् इति। श0ब्रा0 9/1/1/1
9. ऋ0सं0 2.1.6
10. ऋ0सं0 2.1.6 पर सायण कृत भाष्य
11. वही
12. ऋ0सं0 3.2.5
13. ऋ0सं0 4.3.1
14. ऋ0सं0 6.16.39
15. ऋ0सं0 2.3.14
16. निरूक्त अध्याय 10
17. अरोदीदन्तरिक्षे यद् विद्युद्वृष्टिं ददन्नृणाम्।
    चतुर्भिर्ऋषिभस्तेन रूद्र इत्यभिसंस्तुतः शौनकीय।। वृ0दे0 2/34
18. वैदिक माइथौलोजी, मैकडौनेल, हि0 अनु0 रामकुमार राय, पृष्ठ–145
19. ऋ0सं0 1.114.5
20. ऋ0सं0 2.33.5, 8,15
21. प्र बभ्रवे वृषभाय श्वितीचे महो महीं सुष्टुतिमीरयामि।
    नमस्या कल्मलीकिनं नमोभिर्गृणीमसि त्वेषं रुद्रस्य नाम।।
    –ऋ0सं0 2.33.8
22. ऋ0सं0 2.33.8